स्रोत का कारण भी बनता है। इस दृष्टि से यह व्याकरण भर्तृहरि जैसे प्राचीन भाषाविद् और सस्यूर जैसे आधुनिक भाषाविद् को भी प्रभावित करता है।

पाणिनि ने हजारों शब्दों की व्युत्पत्ति बताई। पाणिनि ने यह बताया कि किस शब्द में कौन सा प्रत्यय लगता है। वर्णमाला के स्वर और व्यंजन रूप जो अक्षर हैं, उन्हीं से प्रत्यय बनाए गए। जैसे—वर्ष से वार्षिक, यहाँ मूल शब्द वर्ष है, उससे इक् प्रत्यय जुड़ गया और वार्षिक अर्थात् वर्ष संबंधी यह शब्द बन गया। आर्थिक जीवन का अध्ययन करते हुए पाणिनि ने उन सिक्कों को भी जाँचा, जो बाजारों में चलते थे। पतंजलि का कहना है कि पाणिनि ने जो सूत्र एक बार लिखा, उसे काटा नहीं। व्याकरण में उनके प्रत्येक अक्षर को प्रमाण माना जाता है।

पाणिनि हिंदू वैदिक संस्कृति के अभिन्न अंग थे। व्याकरण के लिए उनकी समष्टि एवं तकनीकी प्राकल्पना वैदिक काल की समाप्ति और शास्त्रीय संस्कृत के उद्भव तक मानी जाती है। यह इस बात की ओर भी संकेत करता है कि पाणिनि वैदिक काल के अंत तक जीवित रहे।

□□□

बिहार के महापुरुषों का संक्षिप्त परिचय

बिहार की धरती पर सदा से महान् विभूतियों का जन्म और आगमन होता रहा है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में ‘हर विचारधारा के लोगों’ का समागम हुआ। हर पीढ़ी के लोगों ने आजादी के महासंग्राम में भाग लिया। सभी ने सामूहिक रूप से बिहार की यशस्वी पताका को और ऊँचा किया। आइए, बिहार के कुछ महापुरुषों का अनुसरण करने हेतु उनकी जीवनी का अध्ययन करें।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद

डॉ. राजेंद्र प्रसाद का जन्म बिहार के तत्कालीन सारण और आज के सिवान जिले के जीरादेई में 3 दिसंबर, 1884 को हुआ। इनके पिता का नाम महादेव सहाय तथा माता का नाम कमलेश्वरी देवी था। इनके पिता पर्शियन थे और संस्कृत भाषा के विद्वान् भी थे। पाँच वर्ष की उम्र में राजेंद्र प्रसाद को मौलवी के पास पर्शियन पढ़ने के लिए भेजा गया और इसके बाद प्राथमिक शिक्षा के लिए छपरा जिला स्कूल भेजा गया। 18 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय का एंट्रेंस उत्तीर्ण किया।

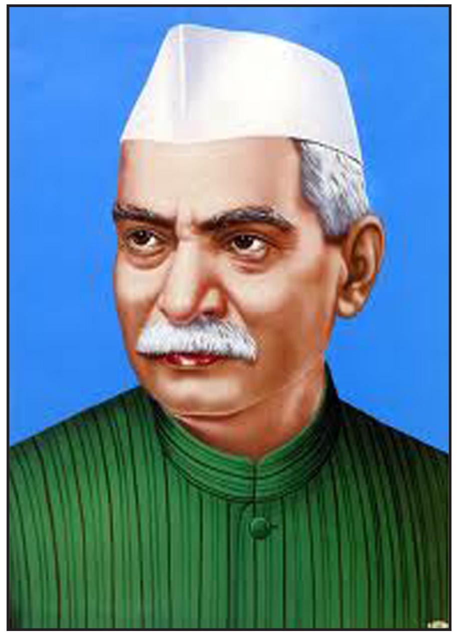

12 वर्ष की कम उम्र में ही इनका विवाह राजवंशी देवी से कर दिया गया। कहा जाता है कि 66 वर्ष के वैवाहिक जीवन में 44 या 45 माह ही दोनों साथ रहे। 66 वर्ष की लंबी अवधि में अपनी धर्मपत्नी को चार वर्ष से भी कम समय दिया और शेष जीवन राष्ट्र को समर्पित कर दिया। ‘भारत छोड़ो आंदोलन’ में भाग लेने की वजह से वे अगस्त 1942 से जून 1945 तक जेल में रहे। वर्ष 1946 से 50 तक वे संविधान सभा के अध्यक्ष रहे और अंतरिम सरकार में (1946 से 48) उन्होंने कृषि और खाद्य मंत्रालय देखा। डॉ. प्रसाद दो बार भारत के राष्ट्रपति रहे। एक सरल

और विवेकशील राष्ट्रभक्त के रूप में डॉ. प्रसाद हमेशा पहचाने गए।

सन् 1920 में उन्होंने वकालत का पेशा छोड़कर गांधीजी के असहयोग आंदोलन में साथ देने के लिए बिहार में भी असहयोग आंदोलन चलाया और इस आंदोलन ने ब्रिटिश राज को हिलाकर रख दिया। गांधीजी के दांडी मार्च का अनुसरण करते हुए डॉ. प्रसाद के नेतृत्व में पटना में भी नमक सत्याग्रह आंदोलन चलाया गया और इसके लिए राजेंद्र प्रसाद को छह माह की कैद हुई। अक्तूबर 1934 में डॉ. प्रसाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़ गए। 1939 में नेताजी सुभाष चंद्र बोस की पदावधि समाप्त होने पर और आचार्य कृपलानी के इस्तीफा देने के बाद उन्होंने कांग्रेस का अध्यक्ष पद सँभाला।

श्री प्रसाद ने भारत की आजादी के लिए कांग्रेस को भरपूर योगदान दिया और देश की आजादी के बाद उन्हें भारत का प्रथम राष्ट्रपति बनने का गौरव प्राप्त हुआ। जीवन के अंतिम कुछ महीने उन्होंने पटना के सदाकत आश्रम में बिताए और 28 फरवरी, 1963 को यह महान् विभूति सदा के लिए इस दुनिया से चली गई।

जयप्रकाश नारायण

जयप्रकाश नारायण का जन्म बिहार के छपरा जिले के सिताबदियारा नामक गाँव में 11 अक्तूबर, 1902 को हुआ था। गाँव की पढ़ाई समाप्त करने के बाद बालक जयप्रकाश को पटना कॉलेजिएट स्कूल में भरती कराया गया। वर्ष 1919 में जयप्रकाश ने दसवीं की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की और इसके बाद कॉलेज की पढ़ाई के लिए विश्वविद्यालय में आ गए।

पटना में अपने विद्यार्थी जीवन में जयप्रकाश नारायण ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और जेल भी गए। सन् 1922 में वे उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका गए, जहाँ उन्होंने 1922 से 1929 के बीच कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय-बरकली, विस्कांसन विश्वविद्यालय में समाज-शास्त्र का अध्ययन किया। पढ़ाई का खर्च चलाने के लिए उन्होंने खेतों में ट्रैक्टर चलाने से लेकर रेस्तराँ में भी काम किया। जीवन भर शाकाहारी रहे जयप्रकाश नारायण को अमरीका में गायों के कत्लखाने में भी काम करना पड़ा था। उन्होंने एम.ए. की डिग्री प्राप्त की, लेकिन गाँव में माताजी की तबीयत ठीक न होने की वजह से 1929 में भारत वापस आ गए और पी-एच.डी. की आस अधूरी रह गई।

प्राप्त हुआ। इसके बाद पाणिनि को व्याकरण के पुरोधा के रूप में भाषाविज्ञान जगत् में उच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया गया।

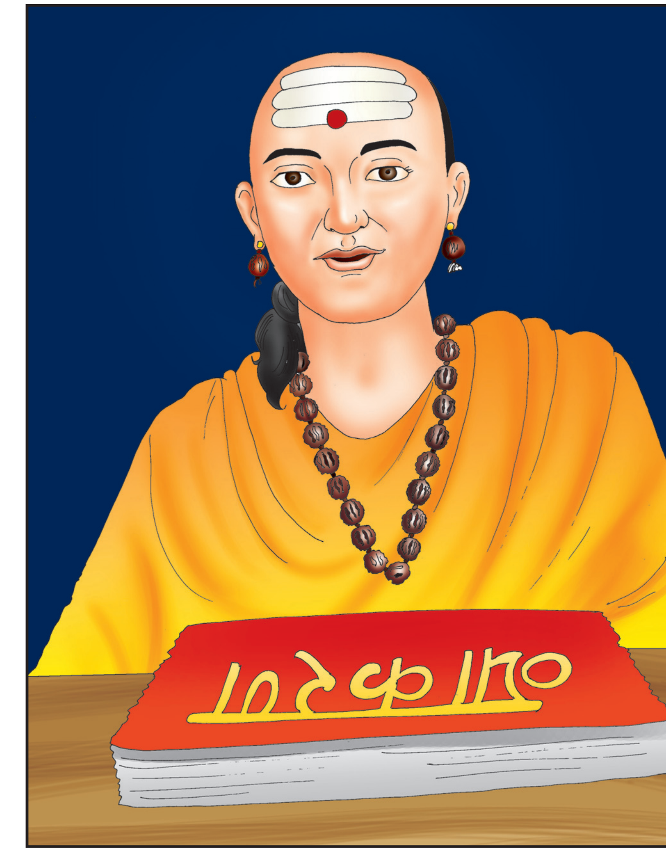

पाणिनि ने इसी भाषा में अष्टाध्यायी (अष्टक) की रचना की, जो आठ अध्यायों में विभाजित है। इन आठ अध्यायों को पुन: चार उपभागों में विभाजित किया गया है। इस व्याकरण की व्याख्या हेतु उन्होंने 4,000 उत्पादित नियमों और परिभाषाओं को रूपायित किया है। इस व्याकरण का प्रारंभ लगभग 1,700 आधारित तत्त्व जैसे, संज्ञा, क्रिया, स्वर और व्यंजन द्वारा किया गया है। वाक्यीय संरचना, संयुक्त संज्ञा आदि को संचालित नियमों के क्रम में आधुनिक नियमों की साम्यता के आधार पर रखा गया है।

पाणिनि ने इसी भाषा में अष्टाध्यायी (अष्टक) की रचना की, जो आठ अध्यायों में विभाजित है। इन आठ अध्यायों को पुन: चार उपभागों में विभाजित किया गया है। इस व्याकरण की व्याख्या हेतु उन्होंने 4,000 उत्पादित नियमों और परिभाषाओं को रूपायित किया है। इस व्याकरण का प्रारंभ लगभग 1,700 आधारित तत्त्व जैसे, संज्ञा, क्रिया, स्वर और व्यंजन द्वारा किया गया है। वाक्यीय संरचना, संयुक्त संज्ञा आदि को संचालित नियमों के क्रम में आधुनिक नियमों की साम्यता के आधार पर रखा गया है। यह व्याकरण उच्चतम रूप में व्यवस्थित है, जिससे संस्कृत भाषा में पाए जाने वाले कुछ साँचों का ज्ञान होता है। यह भाषा में पाई जानेवाली समानताओं के आधार पर भाषिक अभिलक्षणों को प्रस्तुत करता है और विषय तथ्यों के रूप में रूप-विश्लेषणात्मक नियमों का क्रमबद्ध समुच्चय निरूपित करता है।

पाणिनि का व्याकरण विवरणात्मक है। यह इन तथ्यों की व्याख्या नहीं करता कि लोगों को क्या बोलना और लिखना चाहिए, बल्कि यह व्याख्या करता है कि वास्तव में लोग क्या बोलते और लिखते हैं।

अष्टाध्यायी को संस्कृत का प्राचीनतम व्याकरण माना जाता है, जो एक ओर निरुक्त, निघंटु जैसे प्राचीन शास्त्रों की व्याख्या करता है तो वहीं दूसरी ओर वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, प्रजनक भाषाविज्ञान के

ही कुँवर सिंह ने भी विद्रोह का झंडा उठाया और भारी संख्या में टुकड़ी इन विद्रोहियों के साथ हो जाने के लिए आरा भेजी। अंग्रेजों ने भी इस दमन को कुचलने की योजना बनाई। इस लड़ाई में कुँवर सिंह के नेतृत्व में कैप्टन डनबर की हुई पराजय से अंग्रेज तिलमिला उठे। बीबीगंज में 10 अगस्त, 1857 को ब्रिटिश फौजों के साथ कुँवर सिंह के सैनिकों की लड़ाई हुई, जिसमें ब्रिटिश तोपों के सामने कुँवर सिंह के सैनिक टिक न सके। आरा के युद्ध में पराजित होने पर 29 सितंबर, 1857 को 2 हजार आदमियों के साथ कुँवर सिंह बाँदा पहुँचे। यहाँ उन्हें नानासाहब और तात्या टोपे का साथ मिला।

26 मार्च, 1857 को कुँवर सिंह के नेतृत्व में क्रांतिकारियों ने 4 हजार सैनिकों के साथ आजमगढ़ पर कब्जा कर लिया। युद्ध के समय 81 वर्ष के बूढ़े सेनापति कुँवर सिंह अपने सफेद घोड़े पर सवार युद्ध के बीच बिजली की तरह इधर से उधर लपकते हुए दिखाई दे रहे थे। 20 अप्रैल, 1857 की रात कुँवर सिंह मनियर पहुँचे। अंग्रेज सेनापति ब्रिगेडियर डगलस कुँवर उनकी सेना का पीछा कर रहा था। 21 अप्रैल, 1857 को बाँसडीह में कुँवर सिंह के सैनिकों और डगलस की फौज के बीच मुठभेड़ हो गई। इस युद्ध में कुँवर सिंह की सेना को मामूली क्षति पहुँची। 22 अप्रैल, 1857 को जब कुँवर सिंह शिवपुर घाट के पास गंगा नदी पार कर रहे थे, उसी समय एक गोली उनके दाहिनी बाँह में लगी। गोली के जहर को फैलने से रोकने के लिए उन्होंने तलवार से वह हाथ काट डाला और उसे गंगा मैया को समर्पित कर दिया। 23 अप्रैल, 1857 को कुँवर सिंह के सैनिकों और आरा के कैप्टन ग्रांड आयर के बीच भीषण युद्ध हुआ, जिसमें अंग्रेजों की शर्मनाक पराजय हुई। जीवन के अपने अंतिम युद्ध में विजयी होने का समाचार मिलने के तीन दिन पश्चात् कुँवर सिंह 26 अप्रैल, 1857 को मातृभूमि पर निछावर हो गए।

पाणिनि

प्रख्यात वैयाकरण पाणिनि का जन्म 520 वर्ष ईसा पूर्व शालातुला में सिंधु नदी के निकट, जो अब पाकिस्तान का हिस्सा है, में माना जाता है। उनके गुरु का नाम उपवर्ष, पिता का नाम पणिन और माता का नाम दाक्षी था।

किंवदंतियों के आधार पर पाणिनि के जीवनकाल की एक और घटना प्रचलित है कि वर्ष नामक एक ऋषि के दो शिष्य कात्यायन और पाणिनि थे। कात्यायन कुशाग्र और पाणिनि मूढ़ वृत्ति के थे। अपनी इस प्रवृत्ति से चिंतित होकर वे गुरुकुल छोड़कर हिमालय पर्वत पर महेश्वर शिव की तपस्या के लिए चले गए। लंबे समय के बाद उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें दर्शन दिए और प्रबुद्ध होने का आशीर्वाद दिया। इसके बाद उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा और अपने अथक प्रयास से संस्कृत भाषा का गहन अध्ययन-विश्लेषण किया। उनकी इस साधना का प्रतिफल भारतीय संस्कृति को 'अष्टाध्यायी' के रूप में

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उनका संपर्क जवाहरलाल नेहरू से हुआ। वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बने। कई बार जेल भी गए। जब कांग्रेस ने 1934 में चुनाव में हिस्सा लेने का फैसला किया तो जे.पी. ने इसका विरोध किया। 1948 में उन्होंने कांग्रेस के समाजवादी दल का नेतृत्व किया और बाद में गांधीवादी दल के साथ मिलकर 'सोशलिस्ट पार्टी' की स्थापना की।

1975 में इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा की, जिसके अंतर्गत जे.पी. सहित 600 से भी अधिक विरोधी नेताओं को बंदी बनाया गया और प्रेस पर सेंसरशिप लगा दी गई। जेल में जे.पी. की तबीयत और भी खराब हुई। 7 महीने बाद उन्हें मुक्त कर दिया गया। 1977 में जे.पी. के प्रयासों से एकजुट विरोधी पक्ष ने इंदिरा गांधी को चुनाव में हरा दिया।

जयप्रकाश नारायण का निधन उनके निवास-स्थान पटना में 8 अक्तूबर, 1979 को हृदय और मधुमेह की बीमारी के कारण हुआ। उनके सम्मान में कई हजार लोग उनकी शोक-यात्रा में शामिल हुए।

श्रीरामबृक्ष बेनीपुरी

श्रीरामबृक्ष बेनीपुरी साहित्य जगत् के यशस्वी लेखकों में से एक थे। बेनीपुरी का जन्म 23 दिसंबर, 1899 को बिहार में मुजफ्फरपुर जिले के कटरा थानांतर्गत बेनीपुर गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम फूलवंत सिंह था और पितामह यदुनंदन सिंह थे। उनका परिवार एक साधारण किसान परिवार था। पढ़ने में वे मेधावी थे। अपने वर्ग में सदा प्रथम आते थे। आठवीं कक्षा में पढ़ते समय हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की 'विशारद' परीक्षा में उत्तीर्ण की। जब वे मैट्रिक में थे, तब देश में गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन चल रहा था। बेनीपुरी ने गांधीजी के प्रभाव में सन् 1920 में नियमित शिक्षा का परित्याग कर दिया और आंदोलन में कूद पड़े।

वे कई भाषाओं के ज्ञाता थे। हिंदी, अंग्रेजी, गुजराती, बँगला व संस्कृत पर उनका समान अधिकार था। उनकी पहली रचना कविता के रूप में सन् 1961 में कानपुर से प्रकाशित प्रसिद्ध पत्रिका 'प्रताप' में छपी, जिसके संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी थे। बेनीपुरीजी समाज में व्याप्त असमानता, निर्धनता, शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ लगातार कलम चलाते रहे।

श्रीरामबृक्ष बेनीपुरी एक कर्मठ स्वाधीनता सेनानी थे। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में उनकी सक्रिय

भूमिका रही। सन् 1930 से 1942 तक की अवधि में उनके जीवन का अधिकांश समय कारागार में ही व्यतीत हुआ।

बेनीपुरी के साहित्यिक जीवन की विधिवत् शुरुआत सन् 1921 में पत्रकारिता से हुई। वे मशहूर और साहसी पत्रकार थे। उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। वे पत्रकार के साथ-साथ सफल नाटककार और कुशल अनुवादक भी थे। उनके द्वारा रचित नाटकों में 'अंबपाली', 'तथागत', 'विजेता' आदि प्रमुख हैं। उन्होंने कतिपय विशिष्ट व्यक्तित्वों की जीवनियाँ भी लिखीं। इनमें सर्वाधिक चर्चित कार्ल मार्क्स और जयप्रकाश नारायण की जीवनी हैं। गद्य की लोकप्रिय विधा उपन्यास भी उनसे अछूता नहीं रहा। उनके दो प्रमुख उपन्यास 'पतितों के देश में' और 'कैदी की पत्नी' को काफी प्रसिद्धि मिली।

साहित्य में उल्लेखनीय योगदान के लिए बेनीपुरीजी को वर्ष 1967 में अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया गया। 1968 में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा वयोवृद्ध साहित्यिक पुरस्कार से सम्मानित किया गया। बेनीपुरीजी के जीवन का अंतिम काल काफी कष्टपूर्ण रहा। निश्चेतन अवस्था में ही 7 सितंबर, 1968 को उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ

शहनाई अति प्राचीन वाद्ययंत्र है; किंतु शास्त्रीय वाद्ययंत्र के रूप में स्थापित कर उसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाने और प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ को ही है।

बिस्मिल्लाह खाँ का जन्म 21 मार्च, 1916 को बिहार के डुमराँव (बक्सर) में हुआ। जब वे छह साल के थे तो उनकी माँ का देहांत हो गया, जिसके कारण उन्हें अपने ननिहाल में मामा अलीबख्श के पास बनारस जाना पड़ा। बनारस आने के पश्चात् मामा के संरक्षण में बिस्मिल्लाह की संगीत शिक्षा तथा संगीत के अभ्यास का क्रम प्रारंभ हो गया। वे पढ़-लिख तो नहीं पाए, किंतु पूर्ण समर्पण एवं कठोर अनुशासन के बीच संगीत की साधना अवश्य की। बिस्मिल्लाह ने लखनऊ के उस्ताद अहमद खाँ से गायन, बनारस के पंडित लक्ष्मी प्रसाद से ध्रुपद-धमार तथा भैया गणपतराव, जो ग्वालियर के नामी संगीतज्ञ थे, से संगीत की बारीकियों को सीखा।

बिस्मिल्लाह की भक्ति और साधना का ही प्रतिफल था कि वर्ष 1930 में मात्र चौदह वर्ष की अवस्था में उन्हें अखिल भारतीय संगीत परिषद् में अपनी पहली महफिल पेश करने का अवसर प्राप्त

के क्षत-विक्षत शवों को देखकर उनका हृदय करुणार्द्र हो गया। इतने भयंकर रक्तपात से उन्हें असह्य दुःख हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि अब वे कोई युद्ध नहीं करेंगे। उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए लोगों को उपदेश देने लगे। उन्होंने सीरिया, मिस्र, मकदूनिया, बर्मा और कश्मीर में बौद्ध उपदेशक भेजे। अपने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा को बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए सीलोन (श्रीलंका) भेजा।

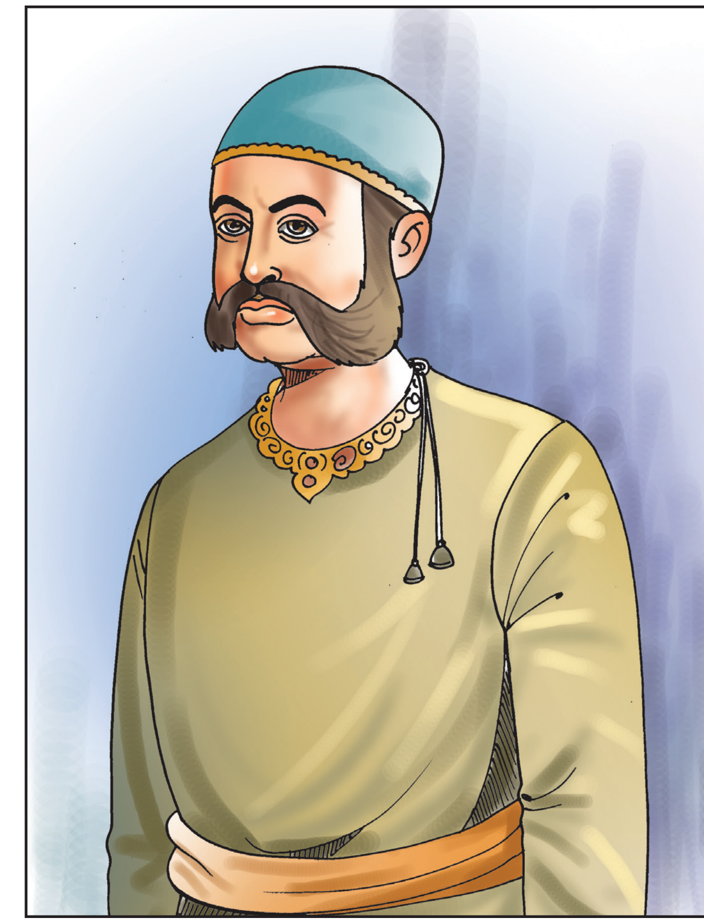

उन्होंने अनेक स्तंभ और स्तूप बनवाए। सारनाथ में बने स्तंभ को भारत के राजकीय चिह्न के रूप अपनाया गया है।

मानसिक शांति की खोज में भटकते अशोक की तक्षशिला में मृत्यु हो गई।

वीर कुँवर सिंह

सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के दौरान शाहाबाद जिला (वर्तमान भोजपुर) स्थित जगदीशपुर नामक स्थान में बाबू कुँवर सिंह ऐसे योद्धा थे, जिनकी धमनियों में विद्रोह तथा स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने का रक्त प्रवाहित हो रहा था।

ऐतिहासिक विद्वान् वीर कुँवर सिंह की जन्मतिथि 23 अप्रैल, 1782 बताते हैं तो कुछ 1778 के करीब हैं। उनके पिता का नाम शाहबजादा सिंह था। पढ़ने-लिखने में उनकी रुचि नहीं थी। लड़ने-भिड़ने, तीरंदाजी, घुड़सवारी जैसे वीरतापूर्ण क्रियाकलापों में अधिक दिलचस्पी रखते थे।

सन् 1826 में कुँवर सिंह ने अपनी पैतृक जमींदारी सँभाली। 1845-46 में कुँवर सिंह के जीवन में परिवर्तन आया, जब ब्रिटिश शासन की द्वेषपूर्ण नीति के विरुद्ध समस्त उत्तर भारत में असंतोष का वातावरण उत्पन्न हो गया। उस समय कुँवर सिंह की उम्र लगभग सत्तर वर्ष की थी। तब मजबूर होकर उन्हें सन् 1857 में अंग्रेजों के विरुद्ध झंडा उठाना पड़ा। विद्रोह हो जाने के कारण वहाँ के ब्रिटिश अधिकारी और सिपाहियों में खलबली मच गई। दानापुर में सैनिकों द्वारा विद्रोह का झंडा उठाए जाने का समाचार पाते

समय अशोक की आयु बहुत कम थी।

अवंति का शासन सँभालने के बाद अशोक एक कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में उभरने लगे। उनका विवाह विदिशा नगर के एक व्यापारी की पुत्री शाक्य कुमारी से हुआ। विवाह के कुछ समय पश्चात् शाक्य कुमारी ने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा को जन्म दिया।

अशोक एक प्रजाप्रिय और कुशल शासक थे। उनके बड़े भाई सुशीमा को बिंदुसार ने तक्षशिला का शासक बनाया था, परंतु वह एक अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। उसकी नीतियों से असंतुष्ट होकर प्रजा ने एक साथ मिलकर मगध शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सुशीमा उस विद्रोह को दबाने में विफल रहा। अंतत: अशोक को तक्षशिला भेजा गया। लेकिन वहाँ उनके पहुँचने पर एक विचित्र घटना घटी। प्रजा ने अशोक के साथ लड़ाई करने के बजाय दिल खोलकर उनका स्वागत किया। सारी प्रजा उनके सामने एकत्र होकर कहा, ''हमें सम्राट् बिंदुसार या राजपरिवार से कोई शत्रुता नहीं है। हमारे विद्रोह के जिम्मेदार राज्य के दुष्ट और स्वार्थी मंत्री हैं।''

अशोक पूरी स्थिति को समझ गए। उन्होंने विद्रोह के लिए जिम्मेदार मंत्रियों और पदाधिकारियों को दंडित किया। ई.पू. 272 में बिंदुसार की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में अशोक को युवराज घोषित किया गया। बाद में ई.पू. 268 में अशोक का राज्याभिषेक हुआ।

साम्राज्य विस्तार करते हुए अशोक एक विशाल साम्राज्य के शासक बन गए। लेकिन मगध का समीपस्थ कलिंग अब तक एक स्वतंत्र राज्य था। उसने अशोक की अधीनता अस्वीकार कर दी थी। अशोक ने कलिंग पर आक्रमण कर दिया। कलिंग के बहादुर सैनिकों ने भी उसका डटकर मुकाबला किया, लेकिन अंतत: कलिंग की छोटी सी सेना बुरी तरह पराजित हुई।

अशोक ने कलिंग पर विजय तो प्राप्त कर ली, परंतु युद्ध में लाखों हताहत सैनिकों तथा हाथी-घोड़ों

हुआ। यहाँ से उनके यश एवं प्रसिद्धि की यात्रा शुरू हुई। उन्होंने अलग-अलग वाद्य वादकों के लिए सफल जुगलबंदी प्रस्तुत की। नए-नए प्रयोग किए तथा नवनिर्माण के मार्ग प्रशस्त किए। सन् 1960 में फिल्म 'गूँज उठी शहनाई' में दी गई संगीत की धुन उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ की थी, जिसमें शहनाई के स्वरों का मर्मभेदी प्रयोग कर उन्होंने अपना नाम अमर कर लिया।

भारत सरकार की ओर से सन् 1961 में उन्हें 'पद्मश्री' से सम्मानित किया गया। 1963 में उन्हें 'अखिल भारतीय शहनाई चक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित किया गया। 1980 में उन्हें 'पद्म-विभूषण' से सम्मानित किया गया तथा 2001 में भारत सरकार का सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत-रत्न' प्रदान किया गया।

उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ समय के बहुत पाबंद थे। सरकार ने इंडिया गेट पर 15 जुलाई, 2006 को उस्ताद की आखिरी इच्छा को ध्यान में रखकर शहनाई बजाने की इजाजत दी थी, किंतु इसी अवधि में तबीयत खराब हो जाने के कारण उनकी वह इच्छा पूरी न हो सकी। अंतत: 21 अगस्त, 2006 को उनका देहांत हो गया।

बाबा नागार्जुन

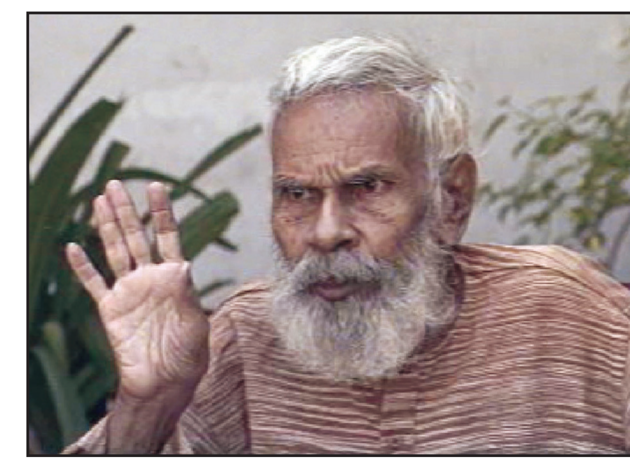

नागार्जुन का जन्म 1911 की ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन अपने ननिहाल में हुआ, जो बिहार प्रांत के मधुबनी जिला के अंतर्गत सतलखा गाँव है। उनके पिता गोकुल मिश्र तथा माता उमा देवी थीं।

नागार्जुन की प्रारंभिक शिक्षा तरौनी गाँव की संस्कृत पाठशाला से शुरू हुई। संस्कृत विद्यालय गोनौली से मध्यमा, फिर पचगछिया सहरसा में कुछ समय तक अध्ययन किया। बाद में संस्कृत की विधिवत् पढ़ाई बनारस जाकर शुरू की। बनारस में संस्कृत के अध्ययन के साथ मैथिली में छंदबद्ध रचना करने लगे। अखबार का चस्का भी लग गया। देश-विदेश में हो रही सामाजिक व राजनीतिक गतिविधियों में अत्यधिक रुचि लेने लगे। चार वर्ष तक काशी, तत्पश्चात् कलकत्ता में साहित्याचार्य तक अध्ययन करने के बाद नागार्जुन विश्व-दर्शन और पर्यटन की लालसा से पढ़ाई छोड़कर लंबी यात्रा पर निकल पड़े।

वर्ष 1934 में 'विश्वबंधु' साप्ताहिक (लाहौर) में उनकी प्रथम हिंदी कविता प्रकाशित हुई। 1936

में दक्षिण भारत घूमते हुए लंका के विख्यात 'विद्यालंकार-परिवेण' में जाकर उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। जून 1938 में नागार्जुन लंका से वापस लौटकर सीधे बिहार में चल रहे किसान आंदोलन में शामिल हो गए।

जीवन में नागार्जुन ने मात्र कलम या रचना को ही हथियार नहीं बनाया, बल्कि खुद जन-संघर्षों में हिस्सा भी लिया। 1974 के जे.पी. आंदोलन में जिन रचनाकारों ने खुलकर भाग लिया था, नागार्जुन उनमें प्रमुख थे।

नागार्जुन का विवाह सन् 1931 में अपराजिता देवी के साथ हुआ था। एक व्यवस्थित तथा निश्चित आय का स्रोत नहीं रहने के कारण परिवार हमेशा आर्थिक संकटों से घिरा रहा। गाँव में तो वे रहते नहीं थे। दिल्ली में अपनी साहित्यिक क्रियाशीलता को कायम रखने के चलते किराए का मकान ले रखा था। उनके पिता का देहांत 1943 में हो चुका था। अपराजिता भी 19 फरवरी, 1997 को दुनिया से चल बसीं।

नागार्जुन ने हर विधा में लेखन कार्य किया, जैसे कहानी, कविता, निबंध, उपन्यास, खंडकाव्य, बाल-साहित्य, कॉलम आदि। प्रमुख रचनाएँ हैं—रतिनाथ की चाची, बाबा बटेसरनाथ, दु:खमोचन, वरुण के बेटे, नई पौध, जमनिया का बाबा आदि (उपन्यास); युगधारा, सतरंगे पंखों वाली, प्यारी पथराई आँखें, तालाब की मछलियाँ, चंदना, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, तूने कहा था, पुरानी जूतियों का कोरस, हजार-हजार बाँहों वाली, पका है यह कटहल, अपने खेत में, मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा (कविता-संग्रह), भस्मांकुर, भूमिजा (खंडकाव्य) चित्रा, पत्रहीन नग्न गाछ (हिंदी में अनूदित), पारो (मैथिली उपन्यास), धर्मलोकशतकम् (संस्कृत काव्य) आदि। साहित्य के क्षेत्र में नागार्जुन के अवदानों को भुलाया नहीं जा सकता। बाबा यायावर नागार्जुन का निधन 5 नवंबर, 1998 को हुआ।

कर्पूरी ठाकुर

कर्पूरी ठाकुर अत्यंत ही गरीब परिवार में पैदा हुए। निरक्षर और भूमिहीन परिवार में 24 जनवरी, 1924 को जन्म लेकर कर्पूरीजी ने सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' और उसके बाद समाजवादी आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा मध्य विद्यालय, ताजपुर तथा हाई स्कूल की शिक्षा तिरहुत अकादमी समस्तीपुर एवं कॉलेज की शिक्षा सी.एम. कॉलेज, दरभंगा में हुई। देश की स्वतंत्रता के बाद वे कांग्रेस से अलग

व्यूह-रचना, राजनीतिशास्त्र आदि में पारंगत हो गया।

उन दिनों मगध पर राजा घननंद का शासन था, जो भोग-विलास में ही मस्त रहता था। इसीलिए जनता उससे रुष्ट रहती थी।

इसी समय मकदूनिया के राजा फिलिप का पुत्र सिकंदर एक के बाद दूसरे देशों को कुचलता हुआ भारत की ओर बढ़ रहा था। वस्तुत: गांधार (तक्षशिला) के राजा आंभि ने अपने प्रतिद्वंद्वी राजा पुरु को नीचा दिखाने के लिए सिकंदर का आह्वान किया था।

चंद्रगुप्त मौर्य ने आंभि के इस कृत्य की घोर निंदा ही नहीं की उनमें कहा-सुनी भी हुई; किंतु चाणक्य के बीच-बचाव करने पर तलवारें खिंचने से बच गईं।

कुछ ही दिनों में सिकंदर अपनी विशाल सेना के साथ गांधार राज्य में आ धमका। आंभि ने उसका जोरदार स्वागत किया। देशवासियों को धमकी भी दी कि भारतीयों की भलाई सिकंदर की सत्ता स्वीकार कर लेने में ही है।

चंद्रगुप्त का खून खौल उठा। चाणक्य ने उसे शांत किया। राजा पुरु और सिकंदर के बीच हुए संग्राम में पुरु हार गया। उसे बंदी बना लिया गया। बाद में सिकंदर ने पुरु से संधि कर ली। यह देखकर चंद्रगुप्त पुरु से अलग हो गया। धीरे-धीर चंद्रगुप्त ने अपनी सेना गठित की अंतत: घनानंद को मारकर स्वयं मगध का राजा बन गया। चंद्रगुप्त ने भारत के दक्षिणी राज्यों को भी अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

इसी बीच सिकंदर की तरह यूनानी सेनापति सेल्यूकस भी चंद्रगुप्त को हराकर भारत का सम्राट् बनने के लिए आया, पर चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस को हरा दिया। इससे चंद्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार ईरान की सीमा तक हो गया। चंद्रगुप्त जल्दी ही प्रजा प्रिय शासक बन गया।

वह अपनी युवावस्था में ही गद्दी पर बैठ गया था। उसने चौबीस वर्षों तक राज्य किया, इसलिए उसकी मृत्यु पैंतालीस और पचास वर्ष के बीच में हुई होगी। इन चौबीस वर्षों में चंद्रगुप्त ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। भारत से यूनानी शासन का अंत करना, अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तक के भूमि-प्रदेश पर अपना अधिकार, एक विशाल सेना और साम्राज्य का जन्म—ये ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य हैं, जिनके कारण चंद्रगुप्त का नाम इतिहास में सदैव अमर रहेगा।

सम्राट् अशोक

मगध-सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य के पौत्र और बिंदुसार के पुत्र सम्राट् अशोक हमारे देश के महान् शासकों में एक थे। उनकी माता का नाम सुभद्रांगी था। अशोक अत्यंत साहसी और बहादुर राजकुमार थे। बिंदुसार ने भी उसकी योग्यताओं को पहचान लिया था। अत: उसने अशोक को अवंति का शासक बना दिया। उस

उन्होंने बड़ी-से-बड़ी संख्याओं को दरशाने के लिए स्वर व व्यंजनों के अक्षर संकेतों का प्रयोग किया। उन्होंने पाई (π) का मान 3.1416 बताया और उसे सन्निकट मान कहा—(π) के मान से अर्धव्यास = परिधि/2(π)=21600/2 (3.1416) कला = 3437'44' 19' '26.08'=3438' सन्निकटत: ।

उन्होंने वर्षों तक आकाशीय पिंडों, ग्रहों व असंख्य तारों का निरीक्षण किया तथा तदनुकूल सिद्धांतों की स्थापना की।

आर्यभट ने पृथ्वी को चार महाभूतों—मिट्टी, जल, अग्नि एवं वायु से बना बताया। आर्यभट ने लघुग्रह मंद स्पष्ट सिद्धांत (हेलियोसेंट्रिक) को कोपरनिकस से 1000 वर्ष पूर्व ही स्थापित कर दिया था। 'आर्यभटीयम्' में शंकु एवं काष्ठ यंत्र की भी चर्चा की गई है तथा उसे बनाने की विधि भी दी गई है। जबकि आर्यभट सिद्धांत में नौ प्रकार के यंत्रों की विशद व्याख्या की गई है। इनमें छायायंत्र, धनुयंत्र, यष्टियंत्र, चक्रयंत्र, छत्रयंत्र, तोपयंत्र, थटिकायंत्र, कपालयंत्र तथा शंकुयंत्र का उल्लेख है।

डी.ई. स्मिथ जैसे गणितज्ञ के अनुसार, आर्यभट की मृत्यु 74 वर्ष की आयु में सन् 550 में हुई थी।

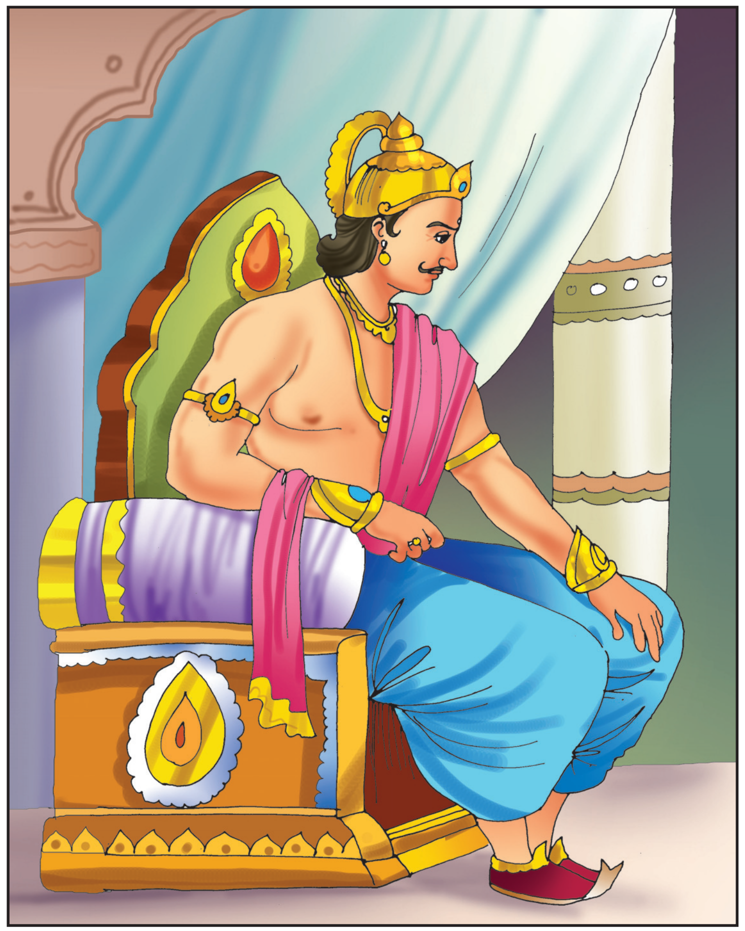

चंद्रगुप्त मौर्य

मौर्य वंश के संस्थापक चंद्रगुप्त मौर्य का जन्म लगभग 2350 वर्ष पूर्व हुआ था। कहा जाता है कि वे मगध के राजा नंद के उपपुत्र थे, जिनका जन्म मुरा नाम की दासी के गर्भ से हुआ था।

चंद्रगुप्त का बचपन अभावों में बीता। सौभाग्य से उन्हें चाणक्य जैसा विद्वान् गुरु मिला, जिसने उन्हें समाट् चंद्रगुप्त बना दिया। बालक चंद्रगुप्त को उनकी माता से माँगकर चाणक्य अपने साथ तक्षशिला ले गए। वे उन दिनों तक्षशिला विश्वविद्यालय में राजनीति के आचार्य थे।

चाणक्य का संरक्षण पाकर चंद्रगुप्त के जीवन की दिशा ही बदल गई। शीघ्र ही वह शस्त्र-संचालन,

होकर समाजवादी दल में आ गए। सन् 1952 से लेकर 17 फरवरी, 1988 तक विधायक, सांसद, नेता प्रतिपक्ष, उपमुख्यमंत्री और मुख्यमंत्री बिहार के पद को सुशोभित करते रहे। वे राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर समाजवादी दल, संयुक्त समाजवादी दल एवं लोक दल के महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे। सन् 1965 में समाजवादी दल और प्रजा समाजवादी दल को मिलाकर संयुक्त समाजवादी दल में कर्पूरीजी ने अहम भूमिका अदा की। डॉ. राममनोहर लोहिया के नेतृत्व में उन्होंने पूरे देश की राजनीति को सन् 1965 में प्रभावित करने का कार्य किया। सन् 1967 में वे संविद् सरकार में बिहार सरकार के उपमुख्यमंत्री हुए। सन् 1969 से 1970 तक संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के अखिल भारतीय अध्यक्ष रहे।

दिसंबर 1970 में वे बिहार के मुख्यमंत्री बने। सन् 1974 में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में जब संपूर्ण क्रांति आंदोलन की शुरुआत हुई तो कर्पूरीजी ने विधानसभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया और आंदोलन में कूद पड़े। उसी वर्ष चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में कई दलों को मिलाकर भारतीय लोक दल के निर्माण में कर्पूरीजी की अहम भूमिका रही। संपूर्ण क्रांति आंदोलन के समय जब देश में आपातकाल लगा तब लोक दल के माध्यम से उन्होंने लोगों में अलख जगाया। पूरे आपातकाल में कर्पूरीजी ने भूमिगत रहकर देश के लोगों को विभिन्न प्रकार से जगाने का कार्य किया। आपातकाल के बाद वर्ष 1977 में केंद्र में जनता पार्टी की सरकार बनी और बिहार में भी कई राज्यों की तरह जनता पार्टी की सरकार बनी। बिहार में जनता पार्टी सरकार का नेतृत्व कर्पूरीजी ने किया। कर्पूरीजी सन् 1980 से लेकर महाप्रयाण की तिथि 18 फरवरी, 1988 तक प्रतिपक्षी दल के नेता रहे।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

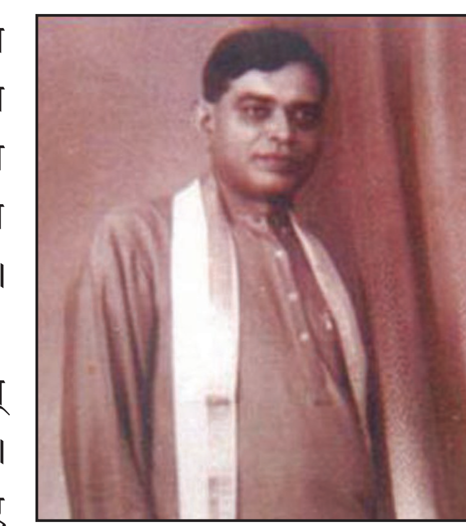

रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म 23 सितंबर, 1908 को बिहार प्रांत के मुंगेर जिला के सिमरिया गाँव, जो वर्तमान में बेगूसराय जिला के अंतर्गत है, में हुआ था। उनके पिता रवि सिंह थे, जिनकी पृष्ठभूमि एक निम्न-मध्य वर्गीय किसान परिवार की थी। जब वे केवल दो वर्ष के थे, तभी उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। अत: उन्हें अनेक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

दिनकरजी का अक्षरारंभ गाँव की पाठशाला से ही हुआ। सन् 1932 में इतिहास विषय से बी.ए. ऑनर्स की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी.ए. पास कर काफी भटकने के बाद उन्हें बरबीघा स्थित एक नए उच्च विद्यालय में प्रधानाध्यापक की नौकरी मिली।

दिनकर की पहली कविता वर्ष 1924–25 में जबलपुर के 'छात्र–सहोदर' पत्र में छपी। 1928 में सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में हुए किसान सत्याग्रह से संबंधित विषय पर दिनकरजी ने दस गीत लिखे, जो 'विजय–संदेश' नाम से पुस्तिका में छपे। दिनकर का पहला कविता संकलन 'रेणुका' 1935 में प्रकाशित हुआ। सन् 1946 में दिनकर की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना 'कुरुक्षेत्र' प्रकाशित हुई। सन् 1961 में 'उर्वशी' का प्रकाशन हुआ। साहित्य जगत् में इस काव्य–रचना का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। 'कामायनी' और 'अंधा युग' के बाद 'उर्वशी' ने एक बड़े सुहृदय समुदाय को अपनी ओर आकृष्ट करने में सफलता हासिल की। इसकी जितनी प्रशंसा हुई, उतनी आलोचना भी। उर्वशी बीसवीं सदी की कालजयी रचना प्रमाणित हुई। दिनकर को कई प्रसंगों में विदेश यात्रा का भी सुयोग प्राप्त हुआ।

सन् 1959 में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। जनवरी 1964 में वे भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए।

सन् 1971 में उन्हें हलका सा पक्षाघात हुआ। शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद दिनकर अपनी दिनचर्या में बाधा नहीं आने देते थे। एक दिन उन्होंने मद्रास और वहाँ से तिरुपति जाने हेतु प्रस्थान किया। उनकी नन्ही सी नतिनी ने उनसे पूछा, 'नानाजी, आप तिरुपति क्यों जा रहे हैं?' दिनकरजी ने सहज भाव से हँसते हुए कहा, 'मौत माँगने जा रहा हूँ!' और वे तिरुपति से वापस न लौट सके। 24 अप्रैल, 1974 की रात साढ़े ग्यारह बजे उन्हें दिल का दौरा पड़ा और एक घंटे के भीतर उनका निधन हो गया। 25 अप्रैल को अपराह्न एक बजे उनका शव विमान से दिल्ली होते हुए पटना लाया गया। संध्या पौने छह बजे शवयात्रा आरंभ हुई और पटना के बाँसघाट पर उनका अंतिम संस्कार संपन्न हुआ।

फणीश्वरनाथ 'रेणु'

फणीश्वरनाथ 'रेणु' बहुमुखी प्रतिभा के धनी और कलम के जादूगर थे। उनका जन्म 4 मार्च, 1921 को पूर्णिया जिले के गाँव औराही हिंगना में हुआ था। बाल्यावस्था में रेणुजी को अपने गाँव में ही अक्षर–ज्ञान मिला। कुछ दिनों तक सिमरबनी में पढ़े और बाद में अररिया विद्यालय में पढ़ने लगे। यहाँ उन्हें कविता करने की प्रेरणा मिली और अच्छी कविता लिखने लगे। इंटरमीडिएट में उनका नाम बनारस के हिंदू विश्वविद्यालय में लिखा दिया गया। विश्वविद्यालय के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बढ़–चढ़कर भाग लेने लगे, इससे उनकी प्रसिद्धि फैलने लगी। उन्हें वहाँ कई पुरस्कार भी मिले।

आर्यभट

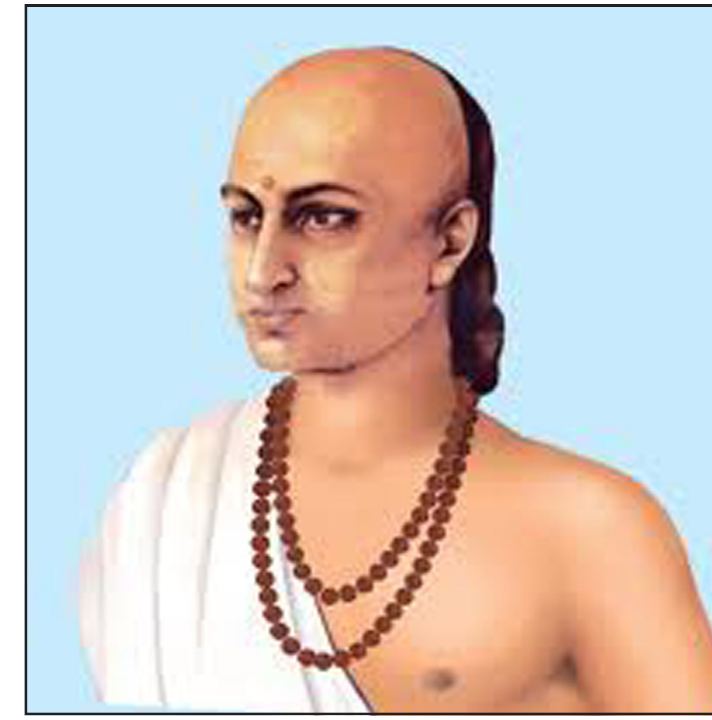

आर्यभट गुप्तकाल के प्रसिद्ध गणितज्ञ, खगोलशास्त्री और दशमलव के आविष्कारक थे। आर्यभट का जन्म कुसुमपुर (आधुनिक पटना) में 13 अप्रैल, 476 को हुआ था। उनकी शिक्षा ने कुसुमपुर और नालंदा विश्वविद्यालय में हुई। वहाँ उन्होंने प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषाओं के साथ–साथ वेदों, उपनिषदों, दार्शनिक ग्रंथों का अध्ययन किया।

आर्यभट ने पारंपरिक अवधारणाओं का कभी अनुमोदन नहीं किया। उन्होंने विभिन्न प्रयोगों के बाद यह निष्कर्ष निकाला था कि सूर्य स्थिर है और गोलाकार पृथ्वी उसके चारों ओर चक्कर लगाती है। इस निष्कर्ष को आर्यभट ने सिद्धांत रूप में अपने ग्रंथ 'आर्यभटीयम्' में प्रतिपादित किया है।

उनकी विद्वत्ता एवं प्रतिभा के कारण तत्कालीन गुप्तवंशी राजा बुद्धगुप्त ने उन्हें नालंदा विश्वविद्यालय का कुलपति बना दिया था।

आर्यभट ने अपने ग्रंथ 'आर्यभटीयम्' में एक नई विचारधारा का सूत्रपात किया था। इसी ग्रंथ में आर्यभट ने सर्वप्रथम यह घोषणा की थी कि पृथ्वी गोल है तथा अपनी धुरी पर घूमती है, जिससे दिन–रात होते हैं। साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि चंद्रमा का अपना कोई प्रकाश नहीं है, बल्कि वह सूर्य के प्रकाश से चमकता है।

आर्यभट ने सूर्यग्रहण व चंद्रग्रहण के वैज्ञानिक कारण बताए कि यह ग्रहण राहु द्वारा सूर्य अथवा चंद्रमा को ग्रसने से नहीं होते बल्कि पृथ्वी व चंद्रमा की पड़ने वाली छायाओं के कारण होते हैं।

आर्यभट ने स्वरों और व्यंजनों की सहायता से बड़ी–बड़ी संख्याएँ संक्षेप में लिखने की अनोखी विधि प्रतिपादित की। उन्होंने बताया कि इकाई, सैकड़ा, दस हजार, दस लाख आदि विषम स्थानों को वर्ग स्थान और दहाई, हजार, लाख आदि सम स्थानों को अवर्ग स्थान कहते हैं। उन्होंने बड़ी संख्याओं को लिखने के लिए सरल शब्दों का प्रयोग किया था। उदाहरण के लिए, 432,00,00 लिखने के लिए '**ख्युघृ**' शब्द का प्रयोग किया था।

महर्षि याज्ञवल्क्य

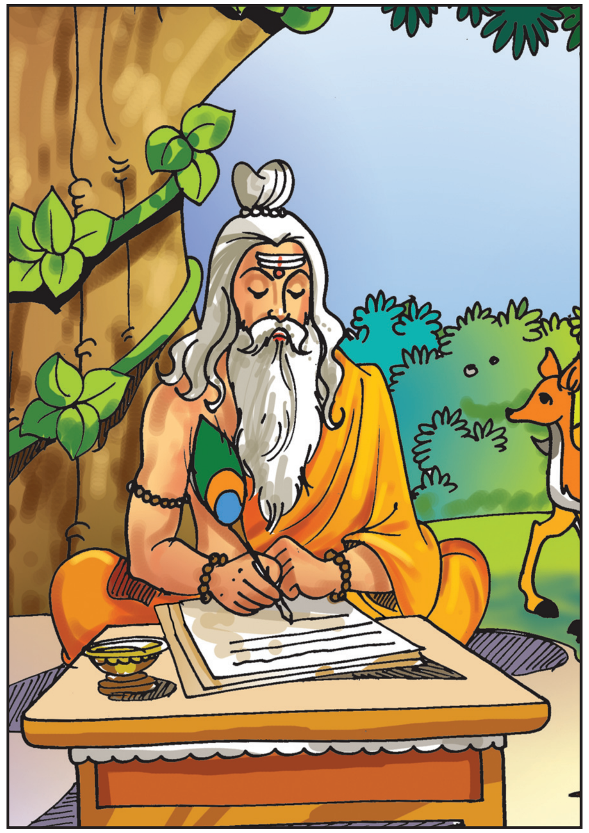

महर्षि याज्ञवल्क्य प्राचीन भारत के महान् साधक और चिंतक थे। वे चारों वेदों के निष्णात आचार्य थे। चारों वेदों के पारंगत पंडित होने के कारण गुरु ने उन्हें 'चतुर्वेदी' की उपाधि प्रदान की थी।

याज्ञवल्क्य का जन्म कण्व शतपथ कांड के अनुसार करन और पंचाल के मध्य बहती नदी के तट पर स्थित चमत्कारपुर में एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ। अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि महर्षि याज्ञवल्क्य ने मिथिला में ही जीवन व्यतीत किया था। उनके समस्त शास्त्रार्थ मिथिला में ही हुए। वे मिथिला में ही आश्रम बनाकर रहते थे।

याज्ञवल्क्य ज्ञानी के साथ कर्मकांडी तथा भक्त भी थे। याज्ञवल्क्य प्रतिदिन विहित विधानपूर्वक संध्या-वंदन, पूजा-पाठ, अनुष्ठान एवं यज्ञ आदि करते थे। वे सदाचार एवं सादगी के साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। उनके चार नाम थे—याज्ञवल्क्य, वाजसनि, देवरथ तथा ब्रह्मरथ।

याज्ञवल्क्य ने वैशंपायन मुनि से यजुर्वेद की कुल 101 शाखाओं में से केवल 27 को ही सीखा था, कारण—वे इतना ही जानते और पढ़ाते थे। यजुर्वेद की 59 शाखाओं की शिक्षा याज्ञवल्क्य ने महर्षि व्यास से प्राप्त की। मुनि वैशंपायन याज्ञवल्क्य की प्रतिभा, अध्ययनशीलता, मेधा, निष्ठा तथा व्यक्तित्व से प्रभावित थे। उनकी शिष्य मंडली में इतना तेजस्वी शिष्य अन्य कोई नहीं था।

देश-देशांतर के विद्वान् आज भी महर्षि याज्ञवल्क्य के व्यक्तित्व और रचनाओं पर अनुशीलन कर रहे हैं। मिथिला के महान् विद्वान् मंडन मिश्र ने महर्षि याज्ञवल्क्य की वृहदारण्यकोपनिषद् पर वार्तिक रचना की, जो 'याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद' के रूप में विख्यात है। महर्षि का ग्रंथ 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' तो आज भी हिंदू कानून का आधार ग्रंथ है। याज्ञवल्क्य वेदों के ज्ञानपक्ष और कर्मकांडीय पक्ष के महान् ज्ञाता, सिद्धपुरुष तथा यज्ञ संचालक ऋषि थे। उन्होंने स्वयं महर्षि पराशर का जातकर्म संस्कार तथा उपनयन संस्कार कराया था। कात्यायन ऋषि भी महर्षि याज्ञवल्क्य के विरल शिष्य थे। भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण महर्षि याज्ञवल्क्य के द्वारा निर्धारित एवं प्रतिष्ठित शुक्ल यजुर्वेदीय दिनचर्या विधान के अनुसार नित्यकर्म तथा पूजा-पाठ करते थे।

अगस्त 1942 के पूर्व ही ब्रिटिश सरकार के नौकरशाहों ने नजरबंद करने की दृष्टि से कई नेताओं और कार्यकर्ताओं की एक सूची तैयार की थी, जिसमें अन्य कार्यकर्ताओं के साथ रेणु का नाम गरम दल के कार्यकर्ताओं की सूची में आ चुका था और उनके नाम से वारंट भी जारी हो चुका था।

भारत में कांग्रेस के नेतृत्व में जिस समय अंतरिम सरकार गठित हुई, नेपाल में भी नेपाली कांग्रेस की स्थापना हुई। राणाशाही द्वारा नेपाली जनता के शोषण के प्रतिक्रिया-स्वरूप क्रांति की चिनगारी फूटने लगी थी। इस विद्रोह की चिनगारी को प्रज्वलित करने में नेपाली कांग्रेस का मुख्य हाथ था। राणाशाही के विरुद्ध रेणु ने कलम तो पकड़ी ही थी, बंदूक और राइफल भी उठाई। नेपाल की क्रांति के दौरान ही रेणुजी का स्वास्थ्य गिरने लगा था। इसी समय अंतरराष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त 'मैला आँचल' की रचना शुरू हो गई। 'मैला आँचल' की रचना पूर्ण हो जाने के उपरांत कई मित्रों द्वारा दिए गए सहयोग व चंदे की राशि से समता प्रकाशन से इसका प्रकाशन हुआ। बाद में राजकमल प्रकाशन द्वारा 'मैला आँचल' का प्रकाशन किया गया।

'मैला आँचल' के पूरक के रूप में उन्होंने 'परती परिकथा' उपन्यास लिखा। यह उपन्यास भी लोकप्रिय हुआ, किंतु 'मैला आँचल' जितना नहीं। इस रचना की अवधि में ही उनकी एक लंबी कहानी 'तीसरी कसम' गीतकार शैलेंद्र तथा राजकपूर को पसंद आई और उस पर फिल्म बनी। इस फिल्म के निर्माण के लिए शैलेंद्र की मृत्यु के बाद श्री रेणु और शैलेंद्र को भारत सरकार की ओर से पुरस्कृत किया गया। उनकी अन्य कृतियाँ हैं—ठुमरी, दीर्घतपा जुलूस, पलटू बाबू रोड, नेपाली क्रांति कथा, वन तुलसी की गंध, श्रुत-अश्रुत पूर्व, अच्छे आदमी आदि। रेणु को 'पद्मश्री' की उपाधि और 'साहित्यकार सम्मान पेंशन' भी मिली, जो बाद में जयप्रकाश आंदोलन में रेणु ने सरकार को वापस कर दिया।

जे.पी. आंदोलन के समय रेणुजी की राजनीतिक सक्रियता तीव्र हो गई थी और सितंबर 1974 में उन्हें गिरफ्तार कर पूर्णिया जेल भेज दिया गया। अक्तूबर 1974 में पटना हाई कोर्ट के आदेश से जेल से मुक्त हुए। अंतिम दम तक जे.पी. के संपूर्ण क्रांति में जोर लगाते रहे और एक दिन जब मूर्च्छित होकर गिर पड़े, तब उन्हें पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल में भरती किया गया। कई दिनों तक वे बेहोश पड़े रहे और फिर कभी होश में नहीं आए। इस प्रकार उनका असामयिक निधन 11 अप्रैल, 1977 को पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल में हो गया।

मंडन-भारती

मंडन मिश्र मिथिला के प्रसिद्ध दार्शनिक और कुमारिल भट्ट के शिष्य एवं अनुयायी थे। उनकी धर्मपत्नी भारती थीं। परम विदुषी भारती शंकराचार्य और अपने पति मंडन मिश्र के बीच हुए शास्त्रार्थ की

अध्यक्षता कर निर्णायिका बनी थीं और शंकराचार्य से स्वयं शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित भी किया था। यह समय 620 ईसा पूर्व से 710 के मध्य माना जाता है।

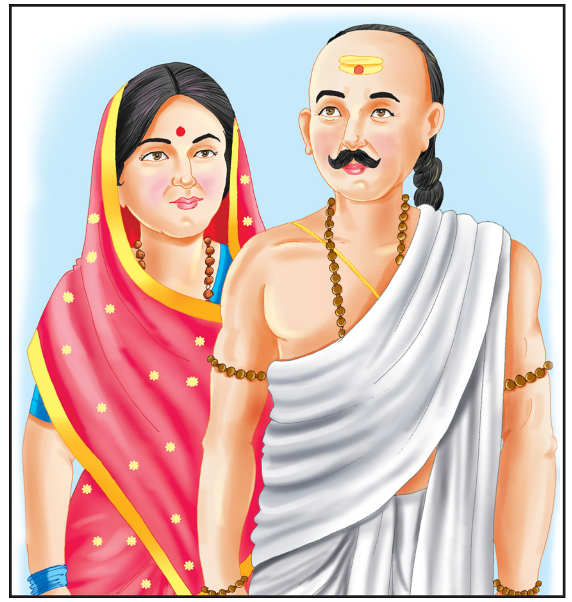

मंडन मिश्र इस देश के महान् तत्त्वदर्शी ऋषि हुए हैं। उनके विचार और उनकी स्थापनाएँ भारतीय चिंतनधारा के शिखर की प्रतिपत्तियाँ हैं। आज की तिथि में उनके उपलब्ध ग्रंथ अपने-अपने विषय के निर्णायक दस्तावेज हैं। मंडन मिश्र ने टीका ग्रंथ, व्याख्या ग्रंथ और कुंजिका ग्रंथ नहीं लिखे। उन्होंने जो कुछ भी लिखा, वह एक चिंतक की हैसियत से स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित है। मंडन मिश्र कोरे मीमांसक और कर्मकांडी नहीं थे, बल्कि वे अद्वैत वेदांती थे। मीमांसा पर लिखे गए उनके ग्रंथ अद्वैत सिद्धांत का मुख्य रूप से अनुमोदन करनेवाले ग्रंथ हैं। मीमांसा के अधूरेपन और एकांगिता का निराकरण करने के लिए ही उन्होंने 'विधि-विवेक' आदि ग्रंथों की रचना की।

मंडन मिश्र ने कर्म को मुक्ति के लिए उपयोगी माना, लेकिन वैदिक कर्मकांड को ही मुक्ति के लिए प्रथम और अंतिम साधन नहीं माना। मंडन मिश्र की मान्यता थी कि कर्म निर्णायक रूप में मुक्ति का साधन नहीं हो सकता, लेकिन सहयोगी अवश्य है। ज्ञान और कर्म के समुच्च का सिद्धांत, जो काफी पुराने समय से चला आ रहा था, उसे मंडन मिश्र ने अपेक्षाकृत अधिक तर्कसंगत और तथ्यपरक बनाकर प्रस्तुत किया। उनकी मान्यता थी कि कर्म से टूटकर कोई धर्म इस पृथ्वी पर पल्लवित और पुष्पित नहीं हो सकता है।

मिथिला की पवित्र भूमि पर किस शताब्दी में आचार्य मंडन मिश्र एवं भारती अवतरित हुए, यह विवाद का विषय बना हुआ है। उन्होंने अपने किसी भी ग्रंथ में अपने जन्मकाल का उल्लेख नहीं किया। मंडन मिश्र के ग्रंथों में किसी ऐतिहासिक राजा का भी प्रसंगवश वर्णन कहीं नहीं मिलता, जिससे उनके समय का निर्धारण किया जा सके, किंतु इतनी बात प्रामाणिक है कि मंडन मिश्र तथा भारती शंकराचार्य के समकालीन थे। ऐतिहासिक प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि भर्तृहरि और कुमारिल भट्ट के बाद मंडन मिश्र का आविर्भाव हुआ।

कुमारिल भट्ट

आचार्य कुमारिल भट्ट की गणना मिथिला के महान् पंडितों और ज्ञानियों में होती है। कुमारिल भट्ट

के अंतर्गत हायाघाट प्रखंड में स्थित है। उदयनाचार्य न्याय, दर्शन एवं वैशेषिक दर्शन दोनों की प्राचीन परंपरा के श्रेष्ठ एवं अंतिम प्रतिनिधि विद्वान् थे। मिथिला क्षेत्र में वाचस्पति मिश्र एवं जयंत भट्ट दोनों न्याय-दर्शन के उद्भट विद्वान् हुए, किंतु वैशेषिक दर्शन पर इन विद्वज्जनों की रचना नहीं के बराबर है। इस आधार पर उदयनाचार्य इन सबों से आगे हैं। 'मिथिला तत्त्व विमर्श' के अनुसार उदयनाचार्य नोनोतिबार मूलडे काश्यपगोत्रीय मैथिल ब्राह्मण थे।

उदयनाचार्य का शिष्यों के बीच बड़ा ही सम्मान था। उदयनाचार्य की प्रतिभा और विद्या का प्रचार-प्रसार इतना व्यापक हुआ कि अन्य प्रांतों के छात्र इनसे अध्यापन के लिए आने लगे। इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। उदयनाचार्य ने वेद के साथ अन्य शास्त्रों की शिक्षा अपने शिष्यों को दी। वे शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत पंडित के रूप में देश के विविध क्षेत्रों में वैदिक धर्म की स्थापना में महत्त्वपूर्ण कार्य किए। आज भी मिथिला में उनके कुल के लोग शास्त्र-संपन्न विद्वान् होकर घर-घर में शास्त्रों के अध्यापन कार्य कर रहे हैं। बहुत काल व्यतीत होने पर उदयनाचार्य अत्यंत वृद्ध होकर जराजीर्ण अवस्था में काशी आए। कुछ काल तक काशीवास के उपरांत मणिकर्णिका घाट में लीलापूर्वक बिना किसी क्लेश के अपने शरीर का त्याग किया। इस प्रकार सनातन वैदिक धर्म की स्थापना एवं नास्तिकों की निवृत्ति हेतु इस भूलोक पर उदयनाचार्य का अवतरण एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है।

वैदिक धर्म के समर्थक रहते हुए भी उदयनाचार्य ने सर्वधर्म समन्वय का प्रयास किया। विविध धर्मों एवं वैदिक धर्म के विविध दर्शनों को उन्होंने एकीकृत कर सर्वदर्शन समन्वय का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उदयनाचार्य रचित सात ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिसमें तीन टीका के स्वरूप में तथा चार स्वतंत्र निबंध के रूप में हैं। ये ग्रंथ हैं—'न्यायपरिशिष्ट', 'किरणबली', 'तात्पर्यपरिशुद्धि', 'आत्मत्त्व विवेक', 'न्यायकुसुमांजलि', 'लक्षणावली' तथा 'कुसुमांजलिकारिका'।

आम लोगों तक सुरुचिपूर्ण ढंग से पहुँचाया। इस प्रकार भिखारी ने कला-संप्रेषण का अभिनव प्रयोग कर लोक-साहित्य तथा लोककला की दुनिया में एक अलग पहचान बनाई। उनका यह प्रयोग लोगों की अपनी चीज लगी, जिसे उन्होंने हाथोहाथ लिया। फलत: भिखारी की शोहरत दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी।

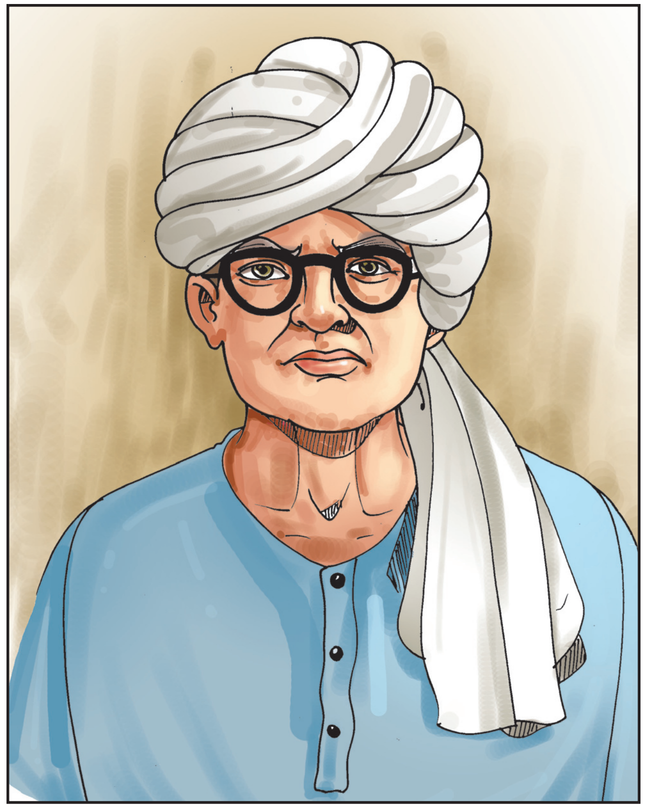

भिखारी ठाकुर की कृतियों में ज्यादातर नाट्य कृतियाँ हैं—बहरा बहार (बिदेसिया), भाई बिरोध, बेटी वियोग (बेटी बेचवा), कलियुग प्रेम (पियवा निसाइल), राधेश्याम बहार, गंगा इसनान, विधवा विलाप, पुत्र-वध, घिंचोर बहार (गबर घिंचोर)। अपूर्ण नाट्य कृतियों में हैं—अटपट, कलियुग बहार। संवाद संबंधी कृतियाँ हैं—बिरहा बहार (धोबी-धोबिन संवाद), ननद-भउजाई संवाद, जशोदा-सखी संवाद तथा नवीन बिरहा (मर्द-औरत संवाद), काव्य कृतियों में—भिखारी हरि कीरतन, रामनाम प्रेम तथा भिखारी-जयहिंद खबर प्रमुख हैं।

भिखारी ठाकुर को भोजपुरी का शेक्सपीयर कहा जाता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में लोक-प्रचलित मुहावरे व टकसाली शब्दों का प्रयोग किया। भिखारी ठाकुर के नाट्य दल में लगभग 18-20 कलाकार थे, जिसमें 7-8 अभिनेता और नर्तक, 3-4 साज-सज्जा और वाद्य यंत्र ढोनेवाले 'मोटिया' तथा 8-10 गवैए-वादक रहते थे। भिखारी स्वयं दल के नायक रहते थे, जिन्हें दल के लोग 'उस्ताद-गुरु' कहकर संबोधित करते थे।

वर्तमान में भिखारी ठाकुर एवं उनकी रचनाओं व कलाओं पर अनेक शोध हो रहे हैं। कई शोधार्थियों ने इन पर शोध कर 'डॉक्टरेट' की उपाधि प्राप्त की है। यह भी एक संयोग की बात है कि आज भी भिखारी के नाटकों की लोकप्रियता पूर्व की ही भाँति बरकरार है। उनका देहांत 10 जुलाई, 1971 को शनिवार के दिन हुआ, जिसकी भविष्यवाणी वे 'राधेश्याम बहार' नाटक में कर चुके थे।

उदयनाचार्य

उदयनाचार्य का जन्म मिथिला क्षेत्र के केरिजन ग्राम में हुआ था। यह गाँव वर्तमान में दरभंगा जिले

का काल छठी से नौवीं सदी के मध्य माना जाता है। यह काल पाल वंश के शासकों का था।

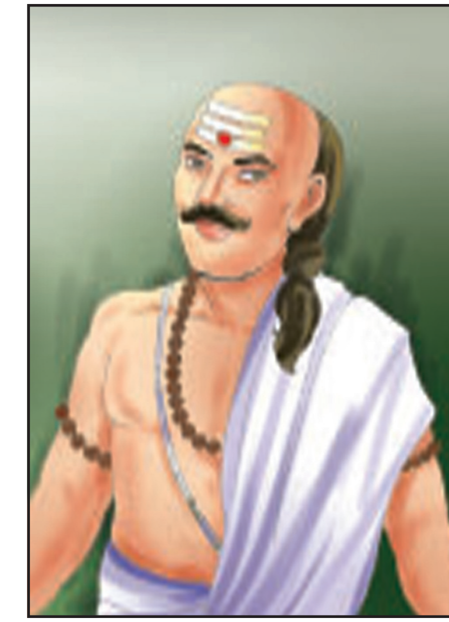

आचार्य कुमारिल भट्ट वेदांती थे। कुमारिल भट्ट ने न्याय, मीमांसा, कर्म एवं ज्ञान से संबंधित अनेक सूत्रों का प्रतिपादन किया, जो उनके द्वारा प्रणीत 'श्लोक वर्त्तिका' में उल्लेखित है। कुछ द्रष्टव्य हैं—

गच्छत: स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादत:।
हसन्ति दुर्जना स्त्त्र समादधति सज्जना:॥

अर्थात् जो चलता है, वही तो कभी (प्रमादवश) गिरता भी है। जो चल ही नहीं रहा हो, वह गिरेगा क्या? लेकिन जब वह गिरता है (बरसात के दिनों में फिसलकर गिरते लोगों का दृश्य याद कीजिए) तो दुर्जन हँसते हैं, लेकिन सज्जन क्या करते हैं? वे समाधान करते हैं, सांत्वना दे सकते हैं, त्रुटियाँ बता सकते हैं, सहयोग कर सकते हैं। लेकिन वे हँसते नहीं हैं।

कुमारिल भट्ट श्लोक वर्तिका (संबंधाक्षेप परिहार) के मोक्ष के संबंध में कहते हैं—'परमात्मप्राणत्य वस्थामात्रम्' अर्थात् मोक्ष समस्त दु:ख से रहित आत्मा की अपने स्वरूप में स्थिति है। कुमारिल के अनुसार, मीमांसक कर्म और ज्ञान दोनों ही मोक्ष के लिए आवश्यक हैं। कुमारिल के अनुसार श्रुति केवल योग और उपासना की आज्ञा देते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुमारिल भट्ट ने धर्म व दर्शन के विविध पक्षों पर अपने विचार रखे हैं। यह भारतीय दार्शनिक चिंतन की अमूल्य धरोहर है। आवश्यक है कि हम उनके अवदानों का मूल्यांकन करें तथा उनके दर्शन रहस्य को समझें।

विद्यापति

विद्यापति मध्यकाल में पूर्वांचल के सबसे लोकप्रिय कवि रहे। उनके सरस गीतों के माधुर्य से न केवल मिथिला और नेपाल वरन् बंगाल, उड़ीसा, असम अर्थात् पूरा पूर्वांचल आप्लावित रहा। कवि विद्यापति का जन्म बिहार के मधुबनी जिला के अंतर्गत बिस्फी ग्राम में 1350 ई. 241 लक्ष्मणाब्द, 1407 वि. संवत् में हुआ था। उनके पिता गणपति ठाकुर राजा गणेश्वर के सभा पंडित थे।

विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर स्वयं एक कवि थे। अपने पिता की छत्रच्छाया में विद्यापति संस्कृत ज्ञान एवं कवित्व लेखन में पारंगत हो गए। विद्यापति की दूसरी पुस्तक 'भू-परिक्रमा' राजा देवसिंह की

आज्ञा से लिखी गई। इसमें नैतिक कथाएँ संगृहीत हैं।

उनके गीत विद्यापति की कवित्व शक्ति और व्यापक लोकप्रियता का मुख्य आधार हैं। ये गीत विविध कालों में रचे गए। कवि की विभिन्न मन:स्थितियों का परिचय इन गीतों में है और श्रृंगार, भक्ति एवं विविध विषयों के गीत हैं ये। इन गीतों का संकलन ही 'विद्यापति पदावली' है। विद्यापति की उपलब्ध कृतियों के अवलोकन से विद्यापति में पांडित्य एवं कवित्व-कौशल के मणिकांचन संयोग का पता चलता है। संभव है, विद्यापति ने और पुस्तकों की भी रचना की हो, जो अंधकार के गर्त में विलीन हो गई हैं।

विद्यापति की अधिकांश कविताएँ राधा-कृष्ण विषयक हैं। जीवन के सांध्य काल में विद्यापति को अपने जीवन के प्रति घोर निराशा हुई थी। जीवन भर श्रृंगारिक रचना में व्यस्त रहने के कारण अंतिम समय क्षण-भंगुर सांसारिकता के प्रति वे उदासीन हो गए। कहा जाता है कि अपनी मृत्यु को निकट जानकर अपने घरवालों से विदा लेकर विद्यापति पतित-पावनी गंगा का सेवन करने चले गए। विद्यापति 90 वर्ष की अवस्था में सं. 1407 (1440 ई.) में मृत्यु को प्राप्त हुए थे। विद्यापति की मृत्यु तिथि के बारे में यह पद प्रचलित है—'विद्यापतिक आयु अवसान, कातिक धवल त्रयोदशी जान।' इस मत के अनुसार विद्यापति की मृत्यु कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी को हुई।

भगवान् महावीर

महावीर स्वामी का जन्म बिहार प्रांत के वैशाली जनपद के कुंडपुर (कुंडग्राम) नगर में महाराज सिद्धार्थ के पुत्र के रूप में चैत्र मास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को ई.पू. 599 में हुआ था। वैशाली के प्रसिद्ध गणराज्यों के मुखिया चेटक की बहन त्रिशला महावीर की माता थीं। उनका नाम 'वर्धमान' रखा गया। राजकुमार वर्धमान की शिक्षा का प्रबंध राजमहल में ही किया गया।

अहिंसा के अपूर्व भाव राजकुमार वर्धमान में बाल्यावस्था से ही थे। वे इस संसार में विरक्त जीवन व्यतीत करके प्राणियों का दु:ख-हरण करना चाहते थे, किंतु इच्छा के विपरीत राजकुमारी यशोदा से वर्धमान का विवाह हो गया। बाद में उन दोनों की एक संतान भी हुई, जिसका नाम 'प्रियदर्शना' रखा गया, लेकिन

विवाह और गृहस्थाश्रम के बंधन उनको माया-मोह की ओर आकृष्ट नहीं कर सके और एक दिन राजकुमार वर्धमान सभी अलंकार, आभूषण एवं वस्त्र उतारकर निर्वस्त्र हो संन्यासी हो गए।

साढ़े बारह वर्षों तक वे मौन-साधना करते रहे। यह मौन आत्म-साधना देवताओं को भी विस्मय में डाल रही थी। मोक्ष मार्ग का सीधा व समतल पथ उनके लिए सुलभ हो गया। वे तीर्थंकर बन गए। देश के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए भगवान् महावीर बिहार प्रदेश के पावापुरी (नालंदा) में आए। ई.पू. 527, 15 अक्तूबर, मंगलवार, कार्तिक कृष्णपक्ष द्वादशी को उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ। दीपावली का पर्व इसी तिथि को मनाया जाता है। उनके निर्वाण-स्थल पर आज भी मंदिर निर्मित है, जिसके समीप परम सरोवर है।

भगवान् महावीर ने लोक को जो उपदेश और शिक्षाएँ दीं, वे आज भी जन-जन का कल्याण कर रही हैं। भगवान् महावीर ने अपने उपदेश और शिक्षाओं में जिन पक्षों पर अधिक बल दिया, वे हैं—अहिंसा, सत्यता, शुचिता, समानता, जीवों पर दया, सेवाभाव, मुक्ति, इंद्रिय-निग्रह, स्वरूप की पहचान, आभ्यंतर अपरिग्रह, पुरुषार्थ, करुणा, उपासना, पुण्यकर्म, लक्ष्य-शुद्धि, विवेकशीलता, परदुख ज्ञान, आध्यात्मिक तप, अनेकांतवाद, सहिष्णुता, वाक्-संयम, अक्रोध, कर्म की प्रधानता।' भगवान् महावीर का उपदेश किसी जाति या संप्रदाय विशेष के लिए नहीं था। उनके अनुयायी जैन धर्मावलंबी कहलाते हैं।

भिखारी ठाकुर

ठाकुर की जन्मतिथि और जन्म-स्थान के बारे में कई अन्य महान् विभूतियों की तरह विवाद है, परंतु यह निर्विवाद है कि भिखारी भोजपुरी की विभूति हैं। भिखारी ठाकुर ने आसपास की ज्वलंत सामाजिक व धार्मिक समस्याओं के साथ व्यक्तिगत मनोदशाओं को एक ग्रामीण कलाकार की दृष्टि से देखा और परखा, उसकी मार्मिकता को रेखांकित किया। फिर अपनी भाषा भोजपुरी में अनेक समाज-सुधार संबंधी नाटक, श्रृंगारिक गीत, लोकभजन की रचना कर प्रचलित लोक रंगमंच का सहारा लेकर उसे आवश्यकता के अनुसार